प्राचीन भारतीय चिन्तन में लोकतांत्रिक चेतना

डॉ. तृप्ति अग्रवाल

प्राचीन भारतीय चिन्तन में लोकतान्त्रिक चेतना पर किसी स्वतन्त्र अध्ययन का प्राय: अभाव है। यह प्राचीन भारतीय चिन्तन में लोकतांत्रिक चेतना की उपेक्षा का ही परिणाम है कि प्राय: यह मान लिया जाता है कि प्राचीन भारत में मनीषियों ने राजतन्त्र की ही कल्पना की थी या उनके पास लोकतन्त्र की परिकल्पना थी ही नहीं।

वस्तुत: वेदों से लेकर अर्थशास्त्र तक सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन में लोकतान्त्रिक चेतना का यथोचित विवेचन हुआ है। मनुस्मृति, याज्ञवल्य स्मृति, शुक्रनीति व महाकाव्यों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि लोकतान्त्रिक चेतना प्राचीन काल में भी विद्यमान थी। महाभारत में दी गई परिभाषानुसार लोकतन्त्र वह शासन प्रणाली है जिसके अनुसार प्रजा का सुख ही उसका सुख है, प्रजा का प्रिय ही उसका प्रिय है, प्रज्ञा का हित ही उसका हित है।

रामायण में लोकतान्त्रिक चेतना

रामायण भारतीय राजनीतिक चिन्तन की परम्परा में अपने विषय का एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है। उद्देश्य की दृष्टि से रामायण राज्य के कल्याणकारी स्वरूप को प्रतिपादित करती है। साथ ही लोकतान्त्रिक चेतना का निर्वाह करने वाले राजनीतिक दायित्वों का कथानकों व पात्रों के चरित्र द्वारा बहुत ही यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है। रामायण में प्रजा को प्रसन्न रखना राजा का प्रथम कर्तव्य माना गया है।

राजा की नियुक्ति

यह अवश्य है कि रामायण काल तक राजा का पद आनुवांशिक बन गया था और सम्भवत: निर्वाचन की प्रथा भी बहुत कुछ अर्थों में अपना पूर्ण सत्ता सम्पन्न रूप खो चुकी थी, किन्तु समाज में विद्यमान यह धारणा कि राजा बनाए जाते हैं और उन्हें प्रजा बनाती है। इतनी प्रबल इतनी दृढ़ थी कि राजा इस परम्परा की अवहेलना नहीं कर पाते थे।

वाल्मीकि और तुलसी ने राजा की उत्पत्ति के संबंध में कुछ नहीं कहा है, परन्तु दोनों ने ही राजा को दैवी अथवा ईश्वर का अवतार माना है। अयोध्याकाण्ड में सुमित्रा ऐसा ही कहती हैं–

''दैवत देवतानां च भूतानां भूतसत्तम:।'' शबरी ने श्री राम को देववर: सर्वोच्च देव बताया है। सुन्दरकाण्ड में हनुमान ने श्री राम को देवताओं के साथ रखा है और उन्हें तीनों लोकों का स्वामी 'लोकत्रय' कहा है।

रामायण में प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह बात है कि राजा बनने के लिए प्रजा को अपने पक्ष में करना आवश्यक है। यहाँ तक कि मन्थरा जो कि एक सती थी वह भी यह अच्छी तरह समझती थी कि राजा बनने के लिए सर्वप्रथम प्रजा को अपने वश में करना आवश्यक है। जो व्यक्ति ऐसा करेगा वह राजा होगा इसलिए मन्थरा कैकेयी से दो वर माँगने के लिए कहती है। क्योंकि वह जानती थी कि राम बनवास न माँगा तो भरत के लिए राज्य माँगना व्यर्थ हैं[1]। मन्थरा का ऐसा विश्वास था कि जब राम चौदह वर्ष के लिए अयोध्या से चले जाएँगे तभी भरत प्रजानुरंजन द्वारा प्रजा को अपने वश में कर सकेंगे व चौदह वर्ष दूर रहने से राम का प्रजा पर जो प्रभाव है वह नहीं रहेगा[2]।

उपरोक्त सभी कथानकों व प्रसंगों से अभिव्यक्त होता है कि रामायण काल में मात्र सिद्धान्त में एक व्यक्ति विशेष को सम्प्रभुता का संरक्षक नियुक्त करने तक ही राजतन्त्र था। व्यवहार में एक श्रेष्ठ लोकतांत्रिक चेतना प्रजा व राजा दोनों पक्षों के मध्य विद्यमान थी।

राजा पर नियन्त्रण

रामायण काल में राजा निरंकुश और व्यसनी होकर नहीं रह सकता था यदि राजा ने कभी प्रजाहित में प्रमाद किया तो ऐसे राजा को प्रजा के हाथों दण्डित होना पडा।

रामायण के अध्ययन से स्पष्ट है कि राजा को परामर्श तथा राज्य कार्यों के संचालन में सहायता देने हेतु मन्त्री, पुरोहित तथा सभासद थे। राजा एक और धर्मशास्त्रों से सीमित था और दूसरी ओर मंत्रिमण्डल व सभा की शक्तियों से सीमित था। यदि राजा धर्मशास्त्रों के विरुद्ध कार्य करता और अपनी प्रजा को सताता था तो उसे निष्कासित यिका जा सकता था या मारा भी जा सकता था।

राजा का व्यक्तित्व महान् और उच्चकोटि का माना गया, तथा उसे इतना पवित्र नहीं माना गया कि अनाचार करने पर भी वह लोकनिन्दा से बचा रहें। रावण भी लोकनिन्दा से बचा रहना चाहता था। उसने हनुमान का वध करने का आदेश दिया तब बड़े ही विनम्र भाव से विभीषण ने उसे याद दिलाया कि दूत का वध करना लोक दृष्टि से एक निन्दित कार्य है। तब रावण ने भी हनुमान के वध का विचार बदल दिया था।

राजा शासन संचालन की समुचित व्यवस्था किए बिना राज्य छोड़कर नहीं जा सकता था। गंगावतरण के आख्यान में कहा भी गया है कि तपस्या हेतु वन में प्रस्थान करने से पूर्व राजा भीगीरथ ने अपने राज्य का प्रबन्ध मंत्रियों को सौंपा दिया था।

संदर्भ–अयोध्याकाण्ड सर्ग 9, 132, अयोध्याकाण्ड सर्ग 9,33, के.एस. रामास्वामी शास्त्री, स्टडीज इन रामायण, सुन्दरकाण्ड 52/63 बालकाण्ड 42/12

प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय) जयपुर परिसर, जयपुर